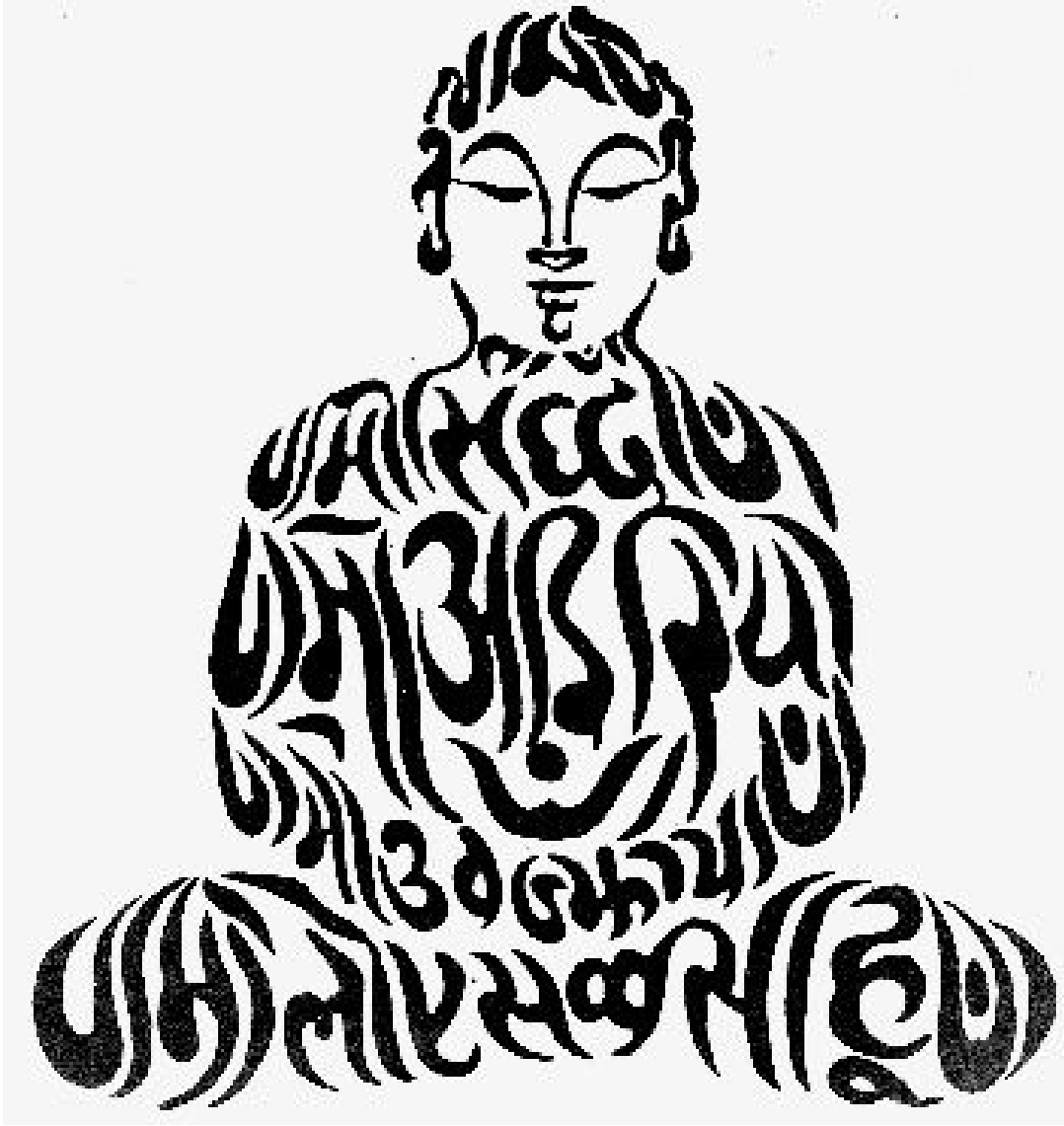


रत्नकरंडक-श्रावकाचार



- आचार्य समन्तभद्र

!! नमः श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

॥ श्रीपरमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरुवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः
प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री रत्नकरण्डक श्रावकाचार
नामधेयं, अस्य मूलाग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः
प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य श्रीसमन्तभद्राचार्यदेव विरचितं

॥ श्रोतारः सावधानतया शृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

Index

कुल गाथा - १५१

गाथा		कहाँ से - कहाँ तक
सम्यग्दर्शन-अधिकार		१-४१
सम्यग्ज्ञान-अधिकार		४२-४६
सम्यक-चारित्र अधिकार	अणुव्रत-अधिकार	४७-६६
	गुणव्रत-अधिकार	६७-९०
	शिक्षाव्रत-अधिकार	९१-१२१
	सल्लेखना-अधिकार	१२२-१३५
	श्रावकपद-अधिकार	१३६-१५०

सम्यग्दर्शन-अधिकार

मंगलाचरण

नमः श्री वर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

जिन्होंने [निर्धूत कलिलात्मने] सम्पूर्ण कर्म कलंक को धोकर अपनी आत्मा को शुद्ध कर लिया है ।
[यद्विद्या] जिनके केवलज्ञान रूपी [दर्पणायते] दर्पण में [सालोकानां त्रिलोकानां] तीनों लोक और आलोक
स्पष्ट झलकते हैं उन [नमः श्री वर्धमानाय] तीर्थकर श्री वर्धमान स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

आचार्य की प्रतिज्ञा

देशयामि समीचीनं, धर्मं कर्म-निवर्हणम्
संसारदुःखतः सत्त्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे ॥२॥

मैं [कर्म-निवर्हणम्] कर्मों का विनाश करने वाले उस [समीचीनं] श्रेष्ठ धर्म को [देशयामि] कहता हूँ [यो] जो
[सत्त्वान्] जीवों को [संसारदुःखतः] संसार के दुःखों से निकालकर [उत्तमे सुखे] स्वर्ग-मोक्षादिक के उत्तम सुख में
[धरति] धारण करता है - पहुँचा देता है ।

धर्म का लक्षण

सद्-दृष्टिज्ञानवृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदुः
यदीय-प्रत्यनीकानि, भवन्ति भवपद्धतिः ॥३॥

[धर्मेश्वराः] धर्म के स्वामी जिनेन्द्र देव [सद्-दृष्टिज्ञानवृत्तानि] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र
को [धर्म] धर्म [विदुः] कहते हैं और [यदीय] उसके [प्रत्यनीकानि] विपरीत मिथ्याज्ञान, मिथ्यदर्शन, मिथ्या
चारित्र [भवपद्धति] संसार मार्ग [भवन्ति] होते हैं ।

सम्यग्दर्शन

श्रद्धानं परमार्थाना-माप्तागमतपोभृताम्
त्रिमूढापोढ-मष्टाङ्गं, सम्यग्दर्शन-मस्मयम् ॥४॥

[परमार्थानाम्] परमार्थभूत [आप्तागमतपोभृताम्] आप्त, आगम और मुनि का [त्रिमूढापोढम्] तीन मूढ़ता
रहित [अष्टाङ्गं] आठ अंग से सहित, [अस्मयम्] आठ प्रकार के मदों से रहित [श्रद्धानं] श्रद्धान करना,
सम्यग्दर्शन कहलाता है ।

आप्त का लक्षण

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना

भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥५॥

जो [दोषेण] दोष [उत्सन्न] रहित होने से वीतराग, [सर्वज्ञेन] सर्व के ज्ञाता होने से सर्वज्ञ और हित के उपदेशक होने से हितोपदेशी हैं, अतः [आगमेन] आगम के [ईशिना] ईश्वर हैं, वे ही [नियोगेन] नियम से [आप्तेन] आप्त [भवितव्यं] होते हैं । [नान्यथा] अन्य प्रकार से / इन गुणों से रहित [ह्याप्तता] आप्त नहीं [भवेत्] हो सकते हैं ।

वीतराग का लक्षण

क्षुत्पिपासाजरातङ्क-जन्मान्तक-भयस्मयाः न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥६॥

जो [क्षुत] भूख, [पिपासा] प्यास, [जरा] बुढ़ापा, [आतंक] रोग/व्याधि, जन्म, [अन्तक] मरण, भय, [स्मयाः] मद, राग, द्वेष, मोह, रोग, [च] चिन्ता, निद्रा, आश्चर्य, अरति, पसीना और खेद ये अठारह दोष [यस्या] जिनमें [न] नहीं हैं [स] उसे ही [आप्तः] आप्त [प्रकीर्त्यते] कहते हैं ।

हितोपदेशी का लक्षण

परमेष्ठी परंज्योतिः विरागो विमलः कृती सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः, सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥७॥

वह आप्त परमेष्ठी, [परंज्योतिः] केवलज्ञानी, [विरागः] वीतराग, विमल, [कृती] कृतकृत्य, सर्वज्ञ, [अनादिमध्यान्तः] आदि, मध्य तथा अन्त से रहित, [सार्वः] सर्वहितकर्ता और [शास्ता] हितोपदेशक [उपलाल्यते] कहा जाता है -- ये सब आप्त के नाम हैं ।

आगम का लक्षण

अनात्मार्थं विना रागैः, शास्ता शास्ति सतो हितम् ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शा-न्मुरजः किमपेक्षते ॥८॥

[शास्ता] आप्त भगवान् [विना रागैः] राग के बिना [अनात्मार्थं] अपना प्रयोजन न होने पर भी [सतो] समीचीन-भव्य जीवों को [हितं] हित का उपदेश देते हैं क्योंकि [शिल्पी] बजाने वाले के [कर] हाथ के [स्पर्शान्] स्पर्श से शब्द करता हुआ [मुरजः] मृदंग [किं] क्या [अपेक्षते] अपेक्षा रखता है ? कुछ भी नहीं ।

शास्त्र का लक्षण

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यम्-दृष्टेष्ट-विरोधकम् तत्त्वोपदेश-कृत्सार्व-शास्त्रं-कापथ-घट्टनम् ॥९॥

[शास्त्रं] वह शास्त्र सर्वप्रथम [आप्तोपज्ञम्] आप्त भगवान् के द्वारा कहा हुआ है, [अनुल्लङ्घ्यम्] अन्य वादियों के द्वारा जो अखण्डनीय है, [अदृष्टेष्टविरोधकम्] प्रत्यक्ष तथा अनुमानादि के विरोध से रहित है, [तत्त्वोपदेशकृत्] तत्त्वों का उपदेश करने वाला है, [सार्व] सबका हितकारी है और [कापथघट्टनम्] मिथ्यामार्ग का निराकरण करनेवाला है ।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

[विषयाशावशातीतः] जो पंचेंद्रिय के विषयों की आशा से रहित हैं, [निरारम्भः] सम्पूर्ण आरम्भ और [अपरिग्रहः] परिग्रह से रहित निग्रन्थ दिगम्बर हैं, [ज्ञानध्यानतपोरक्तः] सदा ही ज्ञान, ध्यान और तप में अनुरागी हैं [सः] वे ही [तपस्वी] तपस्वी साधु [प्रशस्यते] प्रशंसनीय / सच्चे गुरु हैं ।

निःशंकित अंग

इदमेवे-दृशमेव, तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा इत्यकम्पायसाम्भोवत्, सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥११॥

[तत्त्वं] तत्त्व [इदम्] यह [एव] ही है, [ईदृशम्] ऐसा [एव] ही है, [अन्यत्] अन्य [न] नहीं है और [अन्यथा] अन्य प्रकार भी [न] नहीं है [इति] इस तरह आप्त, आगम, गुरु के विषय में [आयसाम्भोवत्] तलवार की धार पर रखे हुए जल के सदृश [अकम्पा] अचलित [रुचिः] श्रद्धान करना और [सन्मार्गे] मोक्ष—मार्ग में संशय रहित रुचि का होना [असंशया] निःशंकित अंग है ।

निःकांक्षित अंग

कर्मपरवशे सान्ते, दुखैरन्तरितोदये पापबीजे सुखेऽनास्था, श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता ॥१२॥

[कर्मपरवशे] कर्मों के आधीन, [सान्ते] अन्त-सहित / नश्वर, [दुःखैः] दुःखों से [अंतरितोदये] बाधित, [च] और [पापबीजे] पाप के कारण ऐसे [सूखे] सांसारिक-सुखों में [अनास्था] अरुचिपूर्ण [श्रद्धानं] श्रद्धान को [अनाकाङ्क्षणा] निःकांक्षित अंग [स्मृता] कहते हैं ।

निर्विचिकित्सा अंग

स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रिते निर्जुगुप्सा गुणप्रीति-मता निर्विचिकित्सिता ॥१३॥

[स्वभावतः] स्वभाव से [अशुचौ] अपवित्र किन्तु [रत्नत्रय पवित्रिते] रत्नत्रय से पवित्र [काये] शरीर में [निर्जुगुप्सा] ग्लानि रहित [गुणप्रीतिः] गुणों से प्रेम करना निर्विचिकित्सा अंग [मता] माना गया है ।

अमूढदृष्टि अंग

कापथे पथि दुःखानां, कापथस्थेप्यसम्मतिः असम्पृक्ति-रनुत्कीर्ति-रमूढा-दृष्टिरुच्यते ॥१४॥

[या दृष्टिः] जो दृष्टि [दुःखानां] दुःखों के [पथि] मार्ग स्वरूप [कापथे] मिथ्या-दर्शनादि-रूप कुमार्ग में और [कापथस्थेऽपि] कुमार्ग में स्थित जीव में भी [असम्मतिः] मानसिक सम्मति से रहित [अनुत्कीर्तिः] वाचनिक प्रशंसा से रहित और [असम्पृक्तिः] शारीरिक संपर्क से रहित है, वह [अमूढा दृष्टिः] अमूढदृष्टि अंग [उच्यते] कहा जाता है ।

उपगूहन अंग

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य, बालाशक्तजनाश्रयाम् वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति, तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥१५॥

[स्वयं शुद्धस्य] स्वभाव से पवित्र [मार्गस्य] रत्नत्रय रूप मार्ग की [बालाशक्तजनाश्रयाम्] अज्ञानी तथा असमर्थ जनों के आश्रय से होने वाली [वाच्यतां] निन्दा को [यत्] जो [प्रमार्जन्ति] परिमार्जित / दूर करते हैं, [तत्] उनके उपगूहन अंग [वदन्ति] कहते हैं ।

स्थितिकरण अंग

दर्शनाच्चरणाद्वापि, चलतां धर्मवत्सलैः प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः, स्थितिकरणमुच्यते ॥१६॥

[धर्मवत्सलैः] धर्म-स्नेही जनों के द्वारा [दर्शनात्] सम्यग्दर्शन से [वा] अथवा सम्यक् चारित्र से [अपि] भी [चलताम्] विचलित होते हुए पुरुषों का [प्रत्यवस्थापनम्] फिर से पहले की तरह स्थित किया जाना [प्राज्ञैः] विद्वानों के द्वारा [स्थितिकरणम्] स्थितिकरण अंग [उच्यते] कहा जाता है ।

वात्सल्य अंग

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव-सनाथापेतकैतवा प्रतिपत्ति-यथायोग्यं, वात्सल्यमभिलष्यते ॥१७॥

[स्वयूथ्यान्प्रति] सहधर्मीजनों के प्रति जो हमेशा ही [अपेतकैतवा] छल कपट रहित होकर [सद्भाव-सनाथा] सद्भावना रखते हुए प्रीति करना और [यथायोग्यं] यथा योग्य उनके प्रति [प्रतिपत्तिः] विनय भक्ति आदि भी करना [वात्सल्यम्] वात्सल्य अंग [अभिलष्यते] कहा जाता है ।

प्रभावना अंग

अज्ञानतिमिरव्याप्ति-मपाकृत्य यथायथम् जिनशासनमाहात्म्य-प्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

[अज्ञान] अज्ञानरूपी [तिमिर] अंधकार के [व्याप्तिम्] विस्तार को [अपाकृत्य] दूर कर [यथायथम्] अपनी शक्ति के अनुसार [जिनशासनमाहात्म्य] जिनशासन के माहात्म्य का [प्रकाशः] प्रकाश फैलाना [प्रभावना] प्रभावना-अंग [स्यात्] है ।

आठ अंगधारी के नाम

तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतिः स्मृता
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥१९॥
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गताः ॥२०॥

[तावत्] क्रम से [प्रथमे] प्रथम अङ्ग में [अञ्जनचौरः] अञ्जन चोर, [ततः] तदनन्तर द्वितीय अंग में [अनन्तमतीः] अनन्तमती [स्मृता] स्मृत है, [तृतीये] तृतीय अङ्ग में [उद्दायनः] उद्दायन नाम का राजा, [तुरीये] चतुर्थ अङ्ग में रेवती रानी [मता] मानी गई है । तदनन्तर पञ्चम अङ्ग में जिनेन्द्रभक्त सेठ, उसके बाद छठे अङ्ग में वारिषेण राजकुमार, उसके बाद सप्तम और अष्टम अङ्ग में विष्णुकुमार मुनि और वज्रकुमार मुनि [लक्ष्यताम्] प्रसिद्धि को [गताः] प्राप्त हुए हैं ।

अङ्गहीन सम्यक्त्व व्यर्थ है

नाङ्गहीनमलं छेतुं दर्शनं जन्मसन्ततिम्
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥२१॥

[अङ्गहीनम्] अंगों से हीन [दर्शनम्] सम्यग्दर्शन [जन्मसन्ततिम्] संसार की सन्तति को [छेतुम्] नष्ट करने के लिए [अलं न] समर्थ नहीं है, [हि] क्योंकि [अक्षरन्यूनः] एक अक्षर से भी हीन [मन्त्रः] मन्त्र [विषवेदानाम्] विष की पीड़ा को [न निहन्ति] नष्ट नहीं करता ।

लोक मूढ़ता

आपगा-सागर-स्नान-मुच्ययः सिकताश्मनाम्
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

[आपगा] नदी, [सागर] सागर में [स्नानम्] स्नान करना, [सिकताश्मनाम्] बालू पत्थर के [उच्ययः] ढेर लगाना, [गिरिपातः] पर्वत से गिरकर मरने से [च] और [अग्निपातः] अग्नि में जलकर मरने में धर्म मानना वह [लोकमूढं] लोक मूढ़ता [निगद्यते] कहा जाता है ।

देव मूढ़ता

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥२३॥

[वरोपलिप्सया] वरदान प्राप्त करने की इच्छा से [आशावान] आशा से युक्त हो [रागद्वेषमलीमसाः] रागद्वेष से मलिन [देवताः] देवों की [यत्] जो [उपासीत] आराधना की जाती है, [तत्] वह [देवतामूढम्] देवमूढता [उच्यते] कही जाती है ।

पाषण्डि मूढता का स्वरूप

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम् पाषण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम् ॥२४॥

[सग्रन्थारम्भहिंसानां] परिग्रह, आरम्भ और हिंसा से सहित तथा [संसारावर्तवर्तिनाम्] संसारभ्रमण के कारणभूत कार्यों में लीन [पाषण्डिनां] अन्य कुलिङ्गियों को [पुरस्कारो] अग्रसर करना, [पाषण्डिमोहनम्] पाषण्डिमूढता-गुरुमूढता [ज्ञेयं] जाननी चाहिये ।

आठमद के नाम

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं, बलमृद्धिं तपो वपुः अष्टावाश्रित्य मानित्वं, स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥२५॥

अपने [ज्ञानं] ज्ञान, [पूजां] पूजा, [कुलं] कुल, [जातिं] जाति, [बलम्] बल, [ऋद्धिम्] वैभव, [तपः] तप [च] और [वपुः] रूप इन [अष्टौ] आठों का [आश्रित्य] आश्रय लेकर [मानित्वम्] गर्वित होने को [गत्स्मयाः] गर्व से रहित गणधर आदिक [स्मयम्] गर्व / मद [आहुः] कहते हैं ।

मद करने से हानि

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः सोऽत्येति धर्ममात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२६॥

[स्मयेन] उपर्युक्त मद से [गर्विताशयः] गर्व-चित्त होता हुआ [यः] जो पुरुष [धर्मस्थान्] रत्नत्रय रूप धर्म में स्थित [अन्यान] अन्य जीवों को [अत्येति] तिरस्कृत करता है [सः] वह [आत्मीयं] अपने [धर्मम्] धर्म को [अत्येति] तिरस्कृत करता है [यतः] क्योंकि [धार्मिकैः विना] धर्मात्माओं के बिना [धर्मः] धर्म [न] नहीं होता है ।

पाप त्याग का उपदेश

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥२७॥

यदि [पापनिरोधः] पाप का आश्रव रुक जाता है तो [अन्यसम्पदा] अन्य सम्पत्ति से [किं] क्या [प्रयोजनम्] प्रयोजन है? और [अथ] यदि [पापास्रवो] पाप का आस्रव होता रहता [अस्ति] है तो [अन्यसम्पदा] अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ?

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम् देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥२८॥

[देवः] जिनेन्द्र-देव [सम्यग्दर्शनसम्पन्नम्] सम्यग्दर्शन से युक्त [मातङ्ग-देहजम्] चांडाल देहधारी मनुष्य को [अपि] भी [भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्] राख के भीतर ढके हुए अंगारे के भीतरी प्रकाश के सामान [देवम्] पूज्य कहते हैं ।

धर्म और अधर्म का फल

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्बिषात् कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥२९॥

[धर्मकिल्बिषात्] धर्म और पाप से [श्वा] कुत्ता [अपि] भी [देवः] देव [च] और [देवः] देव [अपि] भी [श्वा] कुत्ता [जायते] हो जाता है । [शरीरिणां] जीवों को [धर्मात्] धर्म से [अन्या] अन्य और [अपि] भी [का] अनिर्वचनीय [सम्पत्] सम्पदा [भवेत्] प्राप्त होती है ।

सम्यग्दृष्टि कुदेवादिक को नमन ना करे

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम् प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥३०॥

[शुद्धदृष्टयः] सम्यग्दृष्टी जीव [भयाशा-स्नेह-लोभाच्च] भय से, आशा से, प्रेम से अथवा लोभ से [कुदेवागमलिङ्गिनाम्] कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं को [प्रणामम्] प्रणाम [च] और [विनयम्] विनय [एव] भी [न कुर्युः] नहीं करे ।

सम्यग्दर्शन की श्रेष्ठता

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्रुते दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गं प्रचक्षते ॥३१॥

[यत्] जिस कारण [ज्ञानचारित्रात्] ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा [दर्शनम्] सम्यग्दर्शन [साधिमानम्] श्रेष्ठता या उच्चता को [उपाश्रुते] प्राप्त होता है [तत्] उस कारण से [दर्शनम्] सम्यग्दर्शन को [मोक्षमार्गं] मोक्षमार्ग के विषय में [कर्णधारम्] खेवटिया [प्रचक्षते] कहते हैं ।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र की असम्भवता

विद्यावृत्तस्य सम्भूति-स्थितिवृद्धिफलोदयाः

न सन्त्यसति सम्यक्त्वे, बीजाभावे तरोरिव ॥३२॥

[बीजाभावे] बीज के अभाव में [तरोःइव] वृक्ष की तरह [सम्यक्त्वे असति] सम्यग्दर्शन के न होने पर [विद्यावृत्तस्य] ज्ञान और चरित्र की [सम्भूति-स्थितिवृद्धिफलोदयाः] उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल प्राप्ति [न सन्ति] नहीं होती ।

मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान् अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

[निर्मोहः] मोह-मिथ्यात्व से रहित [गृहस्थः] गृहस्थ [मोक्षमार्गस्थः] मोक्षमार्ग में स्थित है परन्तु [मोहवान्] मोह-मिथ्यात्व से सहित [अनगारः] मुनि [नैव] मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है [मोहिनः] मोही मिथ्यादृष्टि [मुनेः] मुनि की अपेक्षा [निर्मोहः] मोह-रहित सम्यग्दृष्टि [गृही] गृहस्थ [श्रेयान्] श्रेष्ठ [अस्ति] है ।

श्रेय और अश्रेय का कथन

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व-समं नान्यत्तनूभृताम् ॥३४॥

[तनूभृताम्] प्राणियों के [त्रैकाल्ये] तीनों कालों और [त्रिजगत्यपि] तीनों लोकों में भी [सम्यक्त्वसमं] सम्यग्दर्शन के समान [श्रेयः] कल्याणरूप और मिथ्यादर्शन के समान [अश्रेयः] अकल्याणरूप [किञ्चित्] किञ्चित् [अन्यत्] दूसरा [न] नहीं है ।

सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति के स्थान

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्मनसकस्त्रीत्वानि दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥३५॥

[सम्यग्दर्शनशुद्धा] सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव [अव्रतिकाः] व्रतरहित होने पर [अपि] भी [नारकतिर्यङ्मनसकस्त्रीत्वानि] नारक, तिर्यञ्च, नपुंसक और स्त्रीपने को [च] तथा [दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां] नीचकुल, विकलांग अवस्था, अल्पआयु और दरिद्रता को [न व्रजन्ति] प्राप्त नहीं होते ।

सम्यग्दृष्टि जीव श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं

ओजस्तेजोविद्या-वीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः माहाकुला महार्था मानवतिलकाः भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥

[दर्शनपूताः] सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव [ओजः तेजोः] उत्साह, प्रताप / कान्ति, विद्या, [वीर्य] पराक्रम, [यशोः] यश, [वृद्धि] उन्नति, विजय, [विभवसनाथा] वैभव से सहित [माहाकुलाः] उच्च कुलोत्पन्न, [महार्थाः] पुरुषार्थयुक्त तथा [मानवतिलकाः] मनुष्यों में श्रेष्ठ [भवन्ति] होते हैं ।

सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्र पद पाते हैं

**अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे ॥३७॥**

[दृष्टिविशिष्टाः] सम्यग्दर्शन से सहित [जिनेन्द्रभक्ताः] जिनेन्द्र भगवान के भक्त पुरुष [स्वर्गे] स्वर्ग में [अमराप्सरसां] देव-देवियों की [परिषदि] सभा में [अष्टगुणपुष्टितुष्टा] अणिमा आदि आठ गुण तथा शारीरिक पुष्टि अथवा अणिमा आदि आठ गुणों की पुष्टि से सन्तुष्ट और [प्रकृष्टशोभाजुष्टा] बहुत भारी शोभा से युक्त होते हुए [चिरं] चिरकाल तक [रमन्ते] क्रीड़ा करते हैं ।

सम्यग्दृष्टि ही चक्रवर्ती होते हैं

**नवनिधिसप्तद्वयरत्ना-धीशाः सर्व-भूमि-पतयश्चक्रम्
वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशः, क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥**

[स्पष्टदृशः] निर्मल सम्यग्दर्शन के धारक मनुष्य ही [नवनिधि] नौ निधियों [सप्तद्वय] और चौदह [रत्ना-धीशाः] रत्नों के स्वामी तथा [क्षत्र] राजाओं के [मौलि] मुकुटों सम्बन्धी [शेखर] कलगियों पर जिनके [चरणाः] चरण हैं ऐसे [सर्व-भूमि-पतय] छः खंड का अधिपति -- चक्रवर्ती होते हुए [चक्रम्] चक्ररत्न को [वर्तयितुं] वर्ताने के लिए [प्रभवन्ति] समर्थ होते हैं ।

सम्यग्दृष्टि ही तीर्थकर होते हैं

**अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्चनूतपादाम्भोजाः
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥३९॥**

[दृष्ट्या] सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से जीव [अमरपतयः] उर्ध्वलोक का स्वामी -- देवेन्द्र, [असुरपतयः] अधोलोक का स्वामी -- धरणेन्द्र [नरपतिभिः] मनुष्यों के स्वामी -- चक्रवर्ति और [य] तथा [यमधर] मुनियों के [पतिभिः] स्वामी -- गणधरों के द्वारा जिनके [पादा] चरण [अम्भोजाः] कमलों की [नूत] स्तुति की जाती है, [सुनिश्चितार्थाः] जिन्होंने पदार्थ का अच्छी तरह निश्चय किया है तथा जो [लोकशरण्याः] तीनों लोकों के शरणभूत हैं, ऐसे [वृष] धर्म [चक्रधराः] चक्र के धारक तीर्थकर [भवन्ति] होते हैं ।

सम्यग्दृष्टि ही मोक्ष-पद प्राप्त करते हैं

**शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥४०॥**

[दर्शनशरणाः] सम्यग्दृष्टि जीव [अजरम्] वृद्धावस्था से रहित, [अरुजम्] रोग से रहित, [अक्षयम्] क्षय से रहित, [अव्याबाधम्] बाधाओं से रहित, [विशोकभयशङ्कम्] शोक, भय और शंका से रहित [काष्ठागतसुखविद्याविभवं] सर्वोत्कृष्ट सुख और ज्ञान के वैभव से सहित तथा [विमलं] द्रव्य-भाव-नोकर्म-रूप मल से रहित [शिवम्] मोक्ष को [भजन्ति] प्राप्त होते हैं ।

उपसंहार

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्,

राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम् ।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम्,
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥४१॥

[जिनभक्ति] जिनेन्द्र भगवान का भक्त [भव्यः] सम्यग्दृष्टि पुरुष [अमेयमानम्] अपरिमित प्रतिष्ठा अथवा ज्ञान से सहित [देवेन्द्रचक्रमहिमानम्] इन्द्र समूह की महिमा को [अवनीन्द्रशिरोर्चनीयम्] मुकुटबद्ध राजाओं के मस्तकों से पूजनीय [राजेन्द्रचक्रम] चक्रवर्ती के चक्ररत्न को [च] और [अधरीकृतसर्वलोकम्] समस्तलोक को नीचा करने वाले [धर्मेन्द्रचक्रम] तीर्थकर के धर्मचक्र को [लब्ध्वा] प्राप्त कर [शिवं] मोक्ष को [उपैति] प्राप्त होता है ।

सम्यग्ज्ञान-अधिकार

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

[यत्] जो ज्ञान, पदार्थ को [अन्यूनम्] न्यूनता रहित, [अनतिरिक्तं] अधिकता रहित, [याथातथ्यं] ज्यों का त्यों, [विपरीतात् विना] विपरीतता रहित [च] और [निःसन्देहं] सन्देह रहित [वेद] जानता है, [तत्] उस ज्ञान को [आगमिनः] गणधर / श्रुताकेवली, [ज्ञान] सम्यग्ज्ञान [आहूः] कहते हैं ।

प्रथमानुयोग

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥४३॥

[समीचीनः बोधः] सम्यक् श्रुतज्ञान [अर्थाख्यानं] परमार्थ विषय का कथन करने वाले [चरितं] एक पुरुषाश्रित कथा और [पुराणम्] त्रेशठशलाका पुरुष-सम्बन्धि कथारूप [अपि] और [पुण्यम्] पुण्यवर्धक तथा [बोधि] ज्ञान और [समाधि] समता के [निधानं] खजाने [प्रथमानुयोगम्] प्रथमानुयोग को [बोधति] जानता है ।

करणानुयोग

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥४४॥

[तथा] प्रथमानुयोग की तरह [मतिः] मननरूप श्रुतज्ञान, [लोकालोकविभक्तेः] लोक और अलोक के विभाग को, [युगपरिवृत्तेः] युगों के परिवर्तन [च] और [चतुर्गतीनां] चारों गतियों के लिये [आदर्शम्] दर्पण के [इव] समान करणनुयोग को भी [अवैति] जानता है ।

चरणानुयोग

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥४५॥

[सम्यग्ज्ञानं] भावश्रुतरूप सम्यग्ज्ञान [गृहमेध्य] गृहस्थ और [अनगाराणां] मुनियों के [चारित्र] चरित्र की [उत्पत्ति] उत्पत्ति, [वृद्धि] वृद्धि और [रक्षाङ्गम्] रक्षा के कारणभूत [चरणानुयोग] चरणनुयोग [समयं] शास्त्र को [विजानाति] जानता है ।

द्रव्यानुयोग

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥४६॥

[द्रव्यानुयोगदीपः] द्रव्यानुयोगरूपी दीपक [जीवाजीवसुतत्त्वे] जीव, अजीव, प्रमुख तत्त्वों को [पुण्यापुण्ये] पुण्य और पाप को [बन्धमोक्षौ] बन्ध और मोक्ष को तथा चकार से आस्रव संवर और निर्जरा को [श्रुतविद्यालोकम्] भाव-श्रुतज्ञान-रूप प्रकाश को फैलाता हुआ [आतनुते] विस्तृत करता है ।

सम्यक-चारित्र अधिकार

चारित्र की आवश्यकता

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

[मोह] दर्शन-मोह रूपी [तिमिर] अंधकार के [अपहरणे] दूर होने पर [दर्शन] सम्यग्दर्शन की [लाभात्] प्राप्ति से जिसे [संज्ञानः] सम्यग्ज्ञान [अवाप्त] प्राप्त हुआ है ऐसा [साधुः] भव्य जीव [रागद्वेषनिवृत्त्यै] रागद्वेष की निवृत्ति के लिए [चरणं] चारित्र को [प्रतिपद्यते] धारण करते हैं ।

चारित्र कब होता है?

रागद्वेषनिवृत्तेर्हि सादिनिवर्तना कृता भवति
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥४८॥

[रागद्वेषनिवृत्तेः] रागद्वेष की निवृत्ति से [हिंसादि निवर्तना] हिंसादि पापों की निवृत्ति [कृता भवति] स्वयं हो जाती है [अनपेक्षितार्थवृत्तिः] जिसे किसी प्रयोजन-रूप फल की प्राप्ति अभिलषित न हो [कः पुरुषः] कौन पुरुष [नृपतीन् सेवते] राजाओं की सेवा करता है ।

चारित्र का लक्षण

हिंसानृतचौर्येभ्यो, मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च
पापप्रणालिकाभ्यो, विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥४९॥

हिंसा, [नृत] झूठ, चोरी, [मैथुन] कुशील और परिग्रह ये पांच [पापप्रणालिकाभ्यो] पाप की नाली के समान पापों के आने के कारण हैं, इनसे विरति का [संज्ञस्य] नाम ही चारित्र है ।

चारित्र के भेद और उपासक

सकलं विकलं चरणं, तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम्
अनगाराणां विकलं, सागाराणां ससङ्गानाम् ॥५०॥

[चरणं] चारित्र दो प्रकार का कहा है -- [सकलं विकलं] सकल-चारित्र और विकल-चारित्र । [तत्] इनमें सकल चारित्र तो [सर्व] सम्पूर्ण [सङ्ग] परिग्रह से [विरतानाम्] विरक्त, ऐसे [अनगाराणां] मुनि को कहा है और विकल-चारित्र को [ससङ्गानाम्] परिग्रह सहित [सागाराणां] गृहस्थ धारण करते हैं ।

विकल चारित्र के भेद

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु-गुण शिक्षाव्रतात्मकं चरणं
पञ्च-त्रि-चतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातम् ॥५१॥

[गृहिणां] गृहस्थों का [चरणं] विकल-चारित्र [अणु-गुण-शिक्षाव्रतात्मकं] अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत के भेद से [त्रेधा] तीन प्रकार का [तिष्ठति] है उन [त्रयं] तीनों में [यथासंख्यं] प्रत्येक के क्रमशः [पञ्च-त्रि-चतुर्भेदं] पञ्च, तीन व चार भेद [अख्यातं] कहे गए हैं ।

अणुव्रत-अधिकार

अणुव्रत का लक्षण

प्राणातिपातवितथ व्याहारस्तेय काम मूर्च्छाभ्यः
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥५२॥

[प्राणातिपात] हिंसा, [वितथव्याहार] झूठ, [स्तेय] चोरी, [काम] कुशील और [मूर्च्छा] परिग्रह [स्थूलेभ्यः] स्थूल रूप से [पापेभ्यः] पापों से [व्युपरमणं] विरत होना [अणुव्रतं] अणुव्रत [भवति] है ।

अहिंसा अणुव्रत

सङ्कल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्

न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

[यत्] जो [योगत्रयस्य] मन-वचन-काय के [कृतकारितमननात्] कृत, कारित, अनुमोदना रूप [सङ्कल्पात्] संकल्प से [चर] त्रस [सत्त्वान्] जीवों को [न हिनस्ति] नहीं मारता है [तत्] उसे, [निपुणाः] गणधर आदिक [स्थूलवधात्] स्थूल-हिंसा से [विरमणम्] विरक्त होना अर्थात् अहिंसाणुव्रत [आहु] कहते हैं ।

अहिंसा अणुव्रत के अतिचार

छेदनबन्धनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः

आहारवारणापि च स्थूलवधाद् व्युपरतेः पञ्च ॥५४॥

[स्थूलवधाद् व्युपरतेः] स्थूल-वध से विरत (अहिंसाणुव्रत) के, [छेदन] छेदना, [बन्धन] बांधना, [पीडनम्] पीड़ा देना, [अतिभारारोपणम्] अधिक भार लादना [अपि] और [आहारवारणा] आहार का रोकना [एते] ये पाँच [व्यतीचाराः] अतिचार हैं ।

सत्याणुव्रत

**स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥५५॥**

[यत्] जो [स्थूलम्] स्थूल [अलीकम्] झूठ को [न वदति] न स्वयं बोलता है [च] और न [परान्] दूसरों से [वादयति] बुलवाता है और ऐसा [सत्यम्] सत्य [अपि] भी न स्वयं बोलता है न दूसरों से बुलवाता है जो [विपदे] दूसरे के प्राणघात के लिये हो [तत्] उसे [सन्तः] सत्पुरुष [स्थूलमृषावादवैरमणम्] स्थूल झूठ का त्याग अर्थात् सत्याणुव्रत [वदन्ति] कहते हैं ।

सत्याणुव्रत के अतिचार

**परिवाद-रहोभ्याख्या-पैशून्यं कूटलेखकरणं च
न्यासापहारितापि च, व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥५६॥**

[परिवाद] झूठा उपदेश देना, [रहोभ्याख्या] अन्यो की एकांत की गुप्त क्रियाओं को प्रगट करना, [पैशून्य] पर की चुगली निन्दा करना, [कूटलेखकरण] झूठे लेख दस्तावेज आदि लिखना और [न्यासापहार] यदि कोई धरोहर की संख्या को भूल जावे तो उसे उतनी ही कहकर बाकी हड़प लेना, सत्याणुव्रत के ये [पञ्च] पाँच [व्यतिक्रम] अतिचार हैं ।

अचौर्याणुव्रत

**निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्यादुपारमणम् ॥५७॥**

[निहितं] रखे हुए [वा] या [पतितं] पड़े हुए अथवा [सुविस्मृतं] बिल्कुल भूले हुए [अविसृष्टं] बिना दिये हुए [परस्वम] दूसरे के धन को [न हरति] न स्वयं लेता है और [न च दत्ते] न किसी दूसरे को देता है वह [अकृशचौर्यात्] स्थूलचोरी का [उपारमणम्] परित्याग अर्थात् अचौर्याणुव्रत है ।

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

**चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥५८॥**

[चौरप्रयोग] चोरी में सहयोग देना, [चौरार्थादान] चोरी का माल खरीदना, [विलोप] राज्य-विरुद्ध / गैर-कानूनी कार्य करना, [सदृशसन्मिश्र] अनुचित लाभ के लिए असली वस्तु में नकली वस्तु मिलाकर बेचना और [हीनाधिक-विनिमान] नाप-तोल में हेरा-फेरी करना, ये पाँच [अस्तेये] अचौर्याणुव्रत के [व्यतीपाताः] अतिचार हैं ।

ब्रह्मचर्य अणुव्रत

**न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥५९॥**

[यत्] जो [पापभीतेः] पाप के भय से [परदारान्] परस्त्रियों के प्रति [न तु] न तो [गच्छति] स्वयं गमन करता है [च] और [न परान्] न दूसरों को [गमयति] गमन कराता है [सा] वह [परदारनिवृत्तिः] परस्त्री-त्याग [अपि] तथा [स्वदारसन्तोषनाम] स्वदार-सन्तोष नाम का अणुव्रत है ।

ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार

**अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥६०॥**

[अन्यविवाहाकरण] अपने व आश्रित कि संतान को छोड़कर अन्य का विवाह कराना, [अनङ्गक्रीडा] कामसेवन के निश्चित अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से सेवन करना, [विटत्व] शरीर से कुचेष्टा करना, मुख से अश्लील शब्द बोलना [विपुलतृषः] कामसेवन की तीव्र अभिलाषा होना [इत्वरिकागमनं] व्याभिचारिणी स्त्री / वेश्यादि के पास आना जाना, ये पाँच [अस्मरस्य] ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार हैं ।

परिग्रह परिमाण अणुव्रत

**धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥६१॥**

[धनधान्यादिग्रन्थं] धन, धान्यादि का परिग्रह [परिमाय] परिमाण कर [तत् अधिकेषु] उससे अधिक में [निःस्पृहता] वांछा रहित होना [परिमितपरिग्रहः] परिमित परिग्रह या [इच्छापरिमाणनामापि] इच्छापरिमाण नामक अणुव्रत है ।

परिग्रह परिमाण अणुव्रत के अतिचार

अतिवाहनातिसङ्ग्रह-विस्मयलोभातिभारवहनानि परिमितपरिग्रहस्य च, विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते ॥६२॥

[अतिवाहन] लोभवश पशु आदि को उनकी क्षमता से अधिक चलाना, [अतिसंग्रह] लोभवश अधिक धान्यदि संगृहीत करना, [अतिविस्मय] अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए वस्तु को कुछ समय रोक कर बेचना [अतिलोभ] अधिकलाभ की आकांक्षा रखना [अतिभारवाहन] लोभ वश अधिक भार लादना [परिमितपरिग्रहस्य च] परिग्रह-परिमाणाणुव्रत के भी [पञ्च] पांच [विक्षेपाः] अतिचार [लक्ष्यन्ते] निश्चित किये जाते हैं ।

पञ्चाणु व्रत का फल

पञ्चाणुव्रतनिधयो, निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकम् यत्रावधिरष्टगुणा, दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥६३॥

[निरतिक्रमणाः] अतिचार रहित [पञ्च] पांच [अणुव्रतनिधयः] अणुव्रत रूपी निधियां [तं सुरलोकं फलन्ति] उसे स्वर्ग-लोक का फल देती है [च] और [यत्रावधिरष्टगुणा] जिसमें अवधि ज्ञान अणिमा-महिमा आदि ८ गुण [च दिव्य शरीरं] और ७ धातुओं से रहित वैक्रियिक-शरीर [लभ्यन्ते] प्राप्त होता है ।

पञ्चाणुव्रत में प्रसिद्ध नाम

मातङ्गो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः नीली जयश्च सम्प्राप्ताः पूजातिशयमुत्तमम् ॥६४॥

[मातङ्गः] अहिंसा अणुव्रत में यमपाल चांडाल, [घनदेवः] सत्य अणुव्रत में घनदेव, [वारिषेणः] अचौर्य अणुव्रत में वारिषेण, [नीली] ब्रह्मचर्य अणुव्रत में वणिक-पुत्री नीलीसती और [जयः] जयकुमार ने परिग्रह का परिमाण करके पूजा के अतिशय को [संप्राप्ता] प्राप्त हुए हैं ।

पांच पाप में प्रसिद्ध नाम

धनश्रीसत्यघोषौ च, तापसारक्षकावपि उपाख्येयास्तथा श्मश्रु-नवनीतो यथाक्रमम् ॥६५॥

[धनश्रीसत्यघोषौ च] धनश्री और सत्यघोष [तापसारक्षकौ] तापस और कोतवाल [अपि] और [श्मश्रु-नवनीतः] श्मश्रुनवनीत ये पाँच [यथाक्रमम्] क्रम से हिंसादि पापों में [उपाख्येयाः] उपाख्यान करने (दृष्टान्त देने) के योग्य हैं ।

श्रावक के आठ मूलगुण

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥

[श्रमणोत्तमाः] मुनियों में उत्तम गणधरादिक देव [मद्यमांसमधुत्यागैः] मद्यत्याग, मांसत्याग और मधुत्याग [सह] के साथ [अणुव्रतपञ्चकम्] पाँच अणुव्रतों को [गृहिणां] गृहस्थों के [अष्टौ] आठ [मूलगुणान्] मूलगुण [आहुः] कहते हैं ।

गुणव्रत-अधिकार

गुणव्रत की परिभाषा

दिग्व्रतमनर्थदण्ड, व्रतं च भोगोपभोग-परिमाणं अनुवृंहणाद् गुणाना-माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥६७॥

[आर्याः] तीर्थङ्कर देव आदि उत्तम पुरुष, [गुणानाम्] आठ मूलगुणों की [अनुवृंहणाद्] वृद्धि करने के कारण [दिग्व्रतम्] दिग्व्रत, [अनर्थदण्डव्रतम्] अनर्थदण्डव्रत और [भोगोपभोग-परिमाणं] भोगोपभोग-परिमाण-व्रत को [गुणव्रतानि] गुणव्रत [आख्यान्ति] कहते हैं ।

दिग्व्रत का लक्षण

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥६८॥

[आमृति] मरणपर्यन्त [अणुपापविनिवृत्त्यै] सूक्ष्म पापों की निवृत्ति के लिए [दिग्वलयं] दिशाओं के समूह को [परिगणितं] मर्यादा सहित [कृत्वा] करके [अहम्] मैं [अतः] इससे [बहिः] बाहर [न] नहीं [यास्यामि] जाऊँगा, [इति] ऐसा [संकल्पः] संकल्प करना दिग्व्रत होता है ।

मर्यादा की विधि

मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥६९॥

[दशानां] दसों [दिशाम्] दिशाओं के [प्रतिसंहारे] परिमाण करने में [प्रसिद्धानि] प्रसिद्ध [मकराकर] समुद्र, [सरित्] नदी, [अटवी] जंगल, [गिरी] पर्वत, [जनपद] देश और [योजनानि] योजन को मर्यादा [प्राहुः] कहते हैं ।

दिग्व्रत की मर्यादा के बाहर अणुव्रतों के महाव्रतपना

अवधे-बहिरणुपाप-प्रतिविरतेदिग्ब्रतानि धारयतां पञ्च महाव्रतपरिणति-मणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥७०॥

[दिग्ब्रतानि धारयताम्] दिग्ब्रतों के धारक [अणुव्रतानि अवधेःबहिः] अणुव्रत की मर्यादा के बाहर [अणुपाप प्रति विरतेः] सूक्ष्म पापों की भी निवृत्ति हो जाने से [पञ्च महाव्रत परिणति] पञ्च-महाव्रत रूप परिणति को [प्रपद्यन्ते] प्राप्त होते हैं ।

सो कैसे ? उसका समाधान

प्रत्याख्यानतनुत्वान्, मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः सत्त्वेन दुखधारा, महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥७१॥

[प्रत्याख्यानतनुत्वात्] प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का मन्द उदय होने से [मन्दतराः] अत्यन्त मन्द अवस्था को प्राप्त हुए, यहाँ तक कि [सत्त्वेन दुखधाराः] जिनके अस्तित्व का निर्धारण करना भी कठिन है ऐसे [चरणमोहपरिणामाः] चारित्रमोह के परिणाम [महाव्रताय] महाव्रत के व्यवहार के लिए [प्रकल्प्यन्ते] उपचरित होते हैं- कल्पना किये जाते हैं ।

महाव्रत का लक्षण

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥७२॥

[हिंसादीनां] हिंसा आदिक [पञ्चानां] पाँच [पापानां] पापों का [मनोवचःकायैः] मन-वचन-काय और [कृतकारितानुमोदैः] कृत-कारित-अनुमोदना से [त्यागः] त्याग करना [महतां] प्रमत्तविरत आदि गुणस्थानवर्ती महापुरुषों का [महाव्रतं] महाव्रत [भवति] होता है ।

दिग्ब्रत के अतिचार

ऊर्ध्वाध स्तातिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम् विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥७३॥

अज्ञान अथवा प्रमाद से [ऊर्ध्व] ऊपर, [अधस्तात्] नीचे [तिर्यग्] और समान धरातल की [व्यतिपाताः] सीमा का उल्लंघन करना, [क्षेत्रवृद्धि] क्षेत्र की मर्यादा को बढ़ा लेना और [अवधीनाम्] की हुई मर्यादा को [विस्मरणम्] भूल जाना, ये [पञ्च] पाँच [दिग्विरतेः] दिग्विरति व्रत के [अत्याशाः] अतिचार [मन्यन्ते] माने जाते हैं ।

अनर्थदण्ड व्रत

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः

विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥७४॥

[व्रतधराग्रण्यः] व्रत धारण करने वाले मुनियों में प्रधान तीर्थङ्कर-देवादि [दिग्वधेः] दिग्व्रत की सीमा के [अभ्यन्तरं] भीतर [अपार्थिकेभ्यः] प्रयोजन रहित [सपापयोगेभ्यः] पापसहित योगों से [विरमणमन] निवृत्त होने को [अनर्थदण्डव्रतं] अनर्थदण्डव्रत [विदुः] कहते हैं ।

अनर्थदण्ड के भेद

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥७५॥

[अदण्डधराः] गणधरदेवादिक [पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः] पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और [प्रमादचर्याम] प्रमादचर्या [पञ्च] इन पाँच को [अनर्थदण्डान] अनर्थदण्ड [प्राहुः] कहते हैं ।

पापोपदेश का लक्षण

तिर्यक्कलेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् कथाप्रसङ्गः प्रसवः स्मर्तव्यः पाप उपदेशः ॥७६॥

[तिर्यक्कलेशवणिज्या] पशुओं को कलेश पहुँचाने वाली क्रियाएँ, ऐसा व्यापार, [हिंसारम्भ] हिंसा, आरम्भ तथा [प्रलम्भनादीनाम्] ठगई आदि की [कथाप्रसङ्गः] कथाओं के प्रसङ्ग [प्रसवः] उत्पन्न करना [पाप उपदेशः] पापोपदेश नाम का अनर्थदण्ड [स्मर्तव्यः] स्मरण करना चाहिए ।

हिंसादान अनर्थदण्ड

परशुकृपाणखनित्र-ज्वलनायुध-शृङ्गिशृङ्खलादीनाम् वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥७७॥

[बुधाः] गणधरदेवादिक विज्ञपुरुष [परशु] फरसा, [कृपाण] तलवार, [खनित्र] कुदारी, [ज्वलनायुध] अग्नि, शस्त्र, [शृङ्गि] विष तथा [शृङ्खलादीनाम्] सांकल आदिक [वधहेतूनां] हिंसा के कारणों के [दानं] दान को [हिंसादानं] हिंसादान नाम का अनर्थदण्ड [ब्रुवन्ति] कहते हैं ।

अपध्यान अनर्थदण्ड

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥७८॥

[जिनशासने विशदाः] जिनागम में निपुण पुरुष [द्वेषात्] द्वेष के कारण किसी के [वधबन्धच्छेदादे] नाश होने, बांधे जाने और छेदे जाने आदि का [च] तथा [रागात्] राग के कारण [परकलत्रादेः] परस्त्री आदि का [आध्यानम्] चिन्तन करने को [अपध्यानम्] अपध्यान नाम का अनर्थ-दण्ड [शासति] कहते हैं ।

दुःश्रुति अनर्थदण्ड

आरम्भसङ्गसाहस - मिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः चेतः कलुषयतां श्रुति-रवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥७९॥

आरंभ, [संग] परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, [मदमदनैः] मद और कामभोग लोभ आदि से [चेतः] मन को [कलुषयताम्] मलिन करने वाले ऐसे [अवधीनाम्] शास्त्रों / पुस्तकों का [श्रुति] सुनना या पढ़ना अथवा पढ़ाना यह सब दुःश्रुति नाम का अनर्थदण्ड [भवति] है ।

प्रमादचर्या अनर्थदण्ड

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम् सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥८०॥

[विफलं] निष्प्रयोजन [क्षिति] पृथिवी, [सलिल] पानी, [दहन] अग्नि और [पवन] वायु सम्बन्धी पाप करना, [वनस्पतिच्छेदम्] वनस्पति का छेदना, [सरणं] स्वयं घूमना [च] और [सारणम्] दूसरों को घुमाना [अपि] भी, इस सबको प्रमादचर्या नाम का अनर्थदण्ड [प्रभाषन्ते] कहते हैं ।

अनर्थदण्डव्रत के अतिचार

कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥८१॥

[कन्दर्पं] हंसी करते हुए अशिष्ट वचन बोलना, [कौत्कुच्यं] शरीर की कुचेष्टा करना, [मौखर्यम्] बकवास करना, [अतिप्रसाधनं] भोगोपभोग की सामग्री का अधिक संग्रह करना [च] और [असमीक्ष्य अधिकरणं] बिना प्रयोजन के ही किसी कार्य का अधिक आरम्भ करना ये [पञ्च] पाँच अनर्थदण्ड-विरति-व्रत के [व्यतीतयः] अतिचार हैं ।

भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत

अक्षार्थानां परिसङ्ख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनुकृतये ॥८२॥

[अर्थवताम्] प्रयोजनभूत [अपि] भी [अवधौ] विषयों के परिणाम के भीतर [रागरतीनां] विषय संबंधी राग से होने वाली आसक्तियों को [तनुकृतये] कृश करने के लिए [अक्षार्थानां] इंद्रिय विषयों का [परिसंख्यानं] परिगणन करना / सीमा निर्धारित करना [भोगोपभोगपरिमाणम्] भोगोपभोगपरिमाण गुणव्रत है ।

भोग-उपभोग के लक्षण

भुक्त्वा परिहातव्यो, भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः उपभोगोऽशनवसन-प्रभृतिः पञ्चेन्द्रियो विषयः ॥८३॥

[अशन] भोजन [वसन] वस्त्र [प्रभृतिः] आदिक [पञ्चेन्द्रियः विषयः] पाँचों इन्द्रिय सम्बन्धी जो विषय [भुक्त्वा] भोगकर के [परिहातव्यः] छोड़ दी जाती है वह [भोगः] भोग है [च] और [भुक्त्वा] भोगकर [पुनः] वापस [भोक्तव्यः] भोगने में आती है वह [उपभोगः] उपभोग है ।

सर्वथा त्याज्य पदार्थ

त्रसहतिपरिहरणार्थं, क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये
मद्यं च वर्जनीयं, जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥८४॥

[जिनचरणौ] जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की [शरणम्] शरण को [उपयातैः] प्राप्त हुए पुरुषों के द्वारा [त्रसहतिपरिहरणार्थं] त्रस जीवों की हिंसा परिहार करने के लिए [क्षौद्रं] मधु और [पिशितं] मांस [च] तथा [प्रमादपरिहृतये] प्रमाद का परिहार करने के लिए [मद्यं] मदिरा [वर्जनीयं] छोड़ने योग्य है ।

अन्य त्याज्य पदार्थ

अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि
नवनीतनिम्बकुसुमं, कैतकमित्येवमवहेयम् ॥८५॥

[अल्पफल] फल थोड़ा और [बहुविघातात्] बहुत त्रस जीवों का विघात होने से [आर्द्राणि] सचित [मूलकम्] जमीकंद, [शृङ्गवेराणि] जहरीले / काँटों वाले बेर, [नवनीत] मक्खन, [निम्बकुसुमं] नीम के फूल और [कैतकम्] केतकी-केवड़ा के फूल [इति] इत्यादि [एवं] इसी प्रकार के अन्य पदार्थ [अवहेयम्] छोड़ने योग्य हैं ।

व्रत का स्वरूप

यदनिष्टं तद् व्रतये-द्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्
अभिसन्धिकृता विरति-विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥८६॥

[यत्] जो वस्तु [अनिष्टम्] अनिष्ट / अहितकर हो [तद्] उसे [व्रतयेत्] छोड़ें [च] और [यत्] जो [अनुपसेव्यम्] सेवन करने योग्य न हो, [एतदपि] वह भी [जह्यात्] त्याग करें [यतः] क्योंकि [योग्यात्] योग्य [विषयात्] विषय से [अभिसन्धिकृता] अभिप्राय-पूर्वक की हुई [विरतिः] निवृत्ति [व्रतम्] व्रत [भवति] होती है ।

यम और नियम

नियमो यमश्च विहितौ, द्वेधा भोगोपभोगसंहारात्
नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥८७॥

[भोगोपभोगसंहारात्] भोग और उपभोग के परिमाण का आश्रय कर [नियमः] नियम [च] और [यमः] यम [द्वेधा] दो प्रकार से [विहितौ] व्यवस्थापित हैं / प्रतिपादित हैं, उनमें [परिमितकालः] जो काल के परिमाण से सहित है वह [नियमः] नियम है और जो [यावज्जीवं] जीवन-पर्यन्त के लिए [ध्रियते] धारण किया जाता है, वह [यमः] यम कहलाता है ।

भोजन-वाहन-शयन-स्नान-पवित्राङ्गरागकुसुमेषु
ताम्बूलवसनभूषण - मन्मथसङ्गीत - गीतेषु ॥८८॥

अद्य दिवा रजनी वा, पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा
इति कालपरिच्छित्या, प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८९॥

भोजन, [वाहन] सवारी, [शयन] शय्या, स्नान, [पवित्राङ्गरागकुसुमेषु] पवित्र अंग में सुगन्ध पुष्पादिक धारण करना, [ताम्बूल] पान, [वसन] वस्त्र, [भूषण] आभूषण, [मन्मथ] काम-सेवन, [सङ्गीतगीतेषु] संगीत और गीत के विषय में, [अद्य] आज, [दिवा] एक दिन, [रजनी] एक रात, [वा] अथवा [पक्षो] एक पक्ष, [मासः] एक माह, [ऋतूः] एक ऋतु / दो माह [वा] अथवा [अयनम्] एक अयन / छह माह [इति] इस प्रकार [कालपरिच्छित्या] समय के विभागपूर्वक [प्रत्याख्यानं] त्याग करना [नियमः] नियम [भवेत्] होता है ।

भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार

विषयविषतोऽनुपेक्षा-नुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवो
भोगोपभोगपरिमा-व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥९०॥

[विषयविषतः] विषयरूपी विष से [अनुपेक्षा] उपेक्षा नहीं होना अर्थात् उसमें आदर रखना, [अनुस्मृतिः] भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करना, [अतिलौल्यम्] वर्तमान विषयों में अधिक लम्पटता रखना, [अतितृषाऽनुभवौ] आगामी विषयों की अधिक तृष्णा रखना और वर्तमान विषय का अत्यन्त आसक्ति से अनुभव करना [पञ्च] ये पाँच [भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः] भोगोपभोग-परिमाण-व्रत के अतिचार कहे गए हैं ।

शिक्षाव्रत-अधिकार

शिक्षाव्रत

देशावकाशिकं वा, सामयिकं प्रोषधोपवासो वा
वैय्यावृत्यं शिक्षा-व्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥९१॥

[देशावकाशिकं] देशव्रत और [सामायिकं] सामायिक, [प्रोषधोपवासः] प्रोषधोपवास [वा] और [वैयावृत्यं] वैयावृत्य ये [चत्वारि] चार [शिक्षाव्रतानि] शिक्षाव्रत [शिष्टानि] कहे गये हैं ।

देशावकाशिक शिक्षाव्रत

देशावकाशिकं स्यात्, कालपरिच्छेदनेन देशस्य प्रत्यहमणुव्रतानां, प्रतिसंहारो विशालस्य ॥९२॥

[विशालस्य] दिग्व्रत में जो दशों दिशाओं की लम्बी चौड़ी [देशस्य] क्षेत्र की मर्यादा का थी [कालपरिच्छेदनेन] काल के विभाग से [प्रत्यहम्] प्रातिदिन [प्रतिसंहारः] त्याग करना [अणुव्रतानां] अणुव्रत पालक श्रावकों का देशावकाशिक व्रत [स्यात्] कहलाता है ।

देशव्रत में मर्यादा की विधि

गृहहारिग्रामाणं, क्षेत्रनदीदावयोजनानां च देशावकाशिकस्य, स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥९३॥

[तपोवृद्धाः] गणधरदेवादिक [देशावकाशिकस्य] देशावकाशिक शिक्षाव्रत के क्षेत्र की [गृह] घर, [हारि] गली, [ग्राम] गाँव [च] और [क्षेत्र] खेत, नदी, [दाव] वन तथा योजनों की [सीम्नां] सीमा [स्मरन्ति] स्मरण करते हैं ।

देशव्रत में काल मर्यादा

संवत्सरमृतुरयनं, मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च देशावकाशिकस्य, प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥९४॥

[प्राज्ञाः] गणधरदेव / आचार्य [देशावकाशिकस्य] देशावकाशिक-व्रत की [कालावधिं] काल-मर्यादा [संवत्सरम्] एक वर्ष, [अयनम्] छह मास, [ऋतु] दो मास, [मास] एक माह, [चातुर्मास] चार माह, [पक्ष] पंद्रह दिन [च] और [ऋक्षम्] एक नक्षत्र को [प्राहुः] कहते हैं ।

यह व्रत भी उपचार से महाव्रत है

सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपञ्चपापसन्त्यागात् देशावकाशिकेन च, महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥९५॥

[सीमान्तानां] सीमाओं के अन्तभाग के [परतः] आगे [स्थूल] स्थूल और [इतर] सूक्ष्म [पञ्चपाप] पाँचों पापों का [सन्त्यागात्] सम्यक् प्रकार त्याग हो जाने से [देशावकाशिकेन] देशावकाशिक-व्रत के द्वारा [महाव्रतानि] महाव्रत [प्रसाध्यन्ते] सिद्ध किये जाते हैं ।

देशावकाशिक व्रत के अतिचार

प्रेषण-शब्दा-नयनं, रूपाभिव्यक्ति-पुद्गलक्षेपौ देशावकाशिकस्य, व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च ॥९६॥

देशावकाशिक व्रत में की हुई मर्यादा के बाहर [प्रेषण] किसी मनुष्य को भेज देना, [शब्द] मर्यादा के बाहर काम करने वाले के प्रति ताली, चुटकी, हुंकार आदि शब्द से संकेत करना, [आनयनम्] मर्यादा के बाहर से कोई वस्तु मंगाना, [रूपाभिव्यक्ति] मर्यादा के बाहर वाले को अपना शरीर आदि दिखाना और [पुद्गलक्षेपौ] मर्यादा के

बाहर काम करने वाले का इशारा करने हेतु कंकड़ आदि फेंकना इस प्रकार से ये पाँच [अत्यायाः] अतिचार [देशावकाशिकस्य] देशावकाशिक व्रत के [व्यपदिश्यन्ते] कहे जाते हैं ।

सामायिक शिक्षाव्रत

आसमयमुक्ति मुक्तं, पञ्चाधानामशेष-भावेन
सर्वत्र च सामयिकाः, सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥

[सामयिकाः] सामायिक के ज्ञाता गणधरदेवादिक [अशेषभावेन] मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना से [सर्वत्र] सब जगह [आसमयमुक्ति] सामायिक के लिए निश्चित समय तक [पञ्चाधानाम] पाँच पापों के [मुक्तं] त्याग करने को [सामयिकं] सामायिक नाम का शिक्षाव्रत [शंसन्ति] कहते हैं ।

समय शब्द की व्युत्पत्ति

मूर्धरुहमुष्टि-वासो-बन्धं, पर्यंक-बन्धनं चापि
स्थानमुपवेशनं वा, समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९८॥

[समयज्ञाः] आगम के ज्ञाता पुरुष [मूर्धरुहबन्धं] सर के केश के बंध, [मुष्टिबन्धं] मुष्टि के बंध (fist) और [वासोबन्धं] वस्त्र के बन्ध के काल को [च] और [पर्यंकबन्धनं] पालथी बांधने के काल को [वा] अथवा [उपवेशनं] खड़े होने के काल को और [स्थानं] बैठने के काल को [समयं] सामायिक का समय [जानन्ति] जानते हैं ।

सामायिक योग्य स्थान

एकान्ते सामयिकं, निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥९९॥

[निर्व्याक्षेपे] उपद्रव-रहित [एकान्ते] एकांत स्थान में, [वनेषु] वन में, [वास्तुषु] घर / धर्मशाला में, [च] और [चैत्यालयेषु] चैत्यालयों में [अपि] और [वापि च] पर्वत पर गुफा में, श्मशान में जहाँ कहीं भी [प्रसन्नधिया] चित्त को प्रसन्न करके [सामयिकं] सामायिक [परिचेतव्यं] बढ़ाना चाहिये ।

व्रत के दिन सामायिक का उपदेश

व्यापार-वैमनस्या-द्विनिवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्त्या
सामयिकं बध्नीया-दुपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥

[उपवासे] उपवास के दिन [वा] अथवा [एक भुक्ते] एकाशन के दिन [व्यापारवैमनस्यात्] शरीरादिक की चेष्टा और मन की व्यग्रता अथवा कलुषता से [विनिवृत्त्याम्] निवृत्ति होने पर [अन्तरात्मविनिवृत्त्या] मानसिक विकल्पों की विशिष्ट निवृत्तिपूर्वक [सामयिकम्] सामायिक को [बध्नीयात्] बढ़ाना चाहिए ।

प्रतिदिन सामायिक का उपदेश

सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यम्

व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन ॥१०१॥

[व्रतपञ्चक] हिंसा त्याग आदि पाँच व्रतों की [परिपूरण] पूर्ति का [कारणम्] कारण [सामायिकं] सामायिक [अनलसेन] आलस्य से रहित और [अवधानयुक्तेन] चित्त की एकाग्रता से युक्त पुरुष के द्वारा [प्रतिदिवसं] प्रतिदिन [यथावत्] शास्त्रोक्त विधि के अनुसार [चेतव्यम्] बढ़ाया जाना चाहिए ।

सामायिक के समय मुनितुल्यता

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि

चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ॥१०२॥

[सामयिके] सामायिक के काल में [सारम्भाः] आरम्भ सहित [सर्वेऽपि] सभी (अन्तरंग-बहिरंग) [परिग्रहा] परिग्रह [नैव] नहीं [सन्ति] होते हैं, इसलिए [तदा] उस समय [गृही] गृहस्थ [चेलोपसृष्ट] उपसर्ग के कारण वस्त्र से वेष्टित [मुनिरिव] मुनि के समान [यतिभावम्] मुनिपने को [आयाति] प्राप्त होता है ।

परीषह - उपसर्ग सहने का उपदेश

शीतोष्णदंशमशक-परीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः सामयिकं प्रतिपन्ना, अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥१०३॥

[सामायिकं] सामायिक को [प्रतिपन्ना] धारण करने वाले [मौनधराः] मौनधारी [च] और [अचलयोगाः] योगों की चंचलता रहित गृहस्थ [शीतोष्णदंशमशकपरीषहम्] शीत, उष्ण तथा दंशमशक परीषह को [च] और [उपसर्गमपि] उपसर्ग को भी सहन करें ।

सामायिक के समय चिन्तन

अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम् मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥

[सामयिके] सामायिक में [अशरणम्] अशरण-रूप, [अशुभम्] अशुभ-रूप, [अनित्यम्] अनित्य-रूप, [दुःखम्] दुःख-रूप और [अनात्मानम्] अनात्म-स्वरूप [भवम्] संसार में [आवसामि] निवास करता हूँ और [मोक्षः] मोक्ष [तद्विपरीतात्मा] उससे विपरीत स्वरूप वाला है [इति] इस प्रकार [ध्यायन्तु] विचारें ।

सामायिक के अतिचार

वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे सामयिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥१०५॥

[वाक्कायमानसानाम्] वचन काय और मन की [दुःप्रणिधानानि] खोटी प्रवृत्ति [अनादरास्मरणे] अनादर और अस्मरण ये [पञ्च] पाँच [भावेन] परमार्थ से [सामयिकस्य] सामायिक के [अतिगमाः] अतिचार [व्यज्यन्ते] प्रकट किये जाते हैं ।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु चतुरभ्यवहार्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६॥

[पर्वणि] चतुर्दशी [च] और [अष्टम्यां] अष्टमी के दिन [सदा] हमेशा के लिए [इच्छाभिः] व्रतविधान की वाञ्छा से [चतुरभ्यवहार्याणां] चार प्रकार के आहारों का [प्रत्याख्यानं] त्याग करना [प्रोषधोपवासः] प्रोषधोपवास [ज्ञातव्यः] जानना चाहिए ।

उपवास के दिन वर्जित कार्य

पञ्चानां पापानामलङ्क्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम् स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्यात् ॥१०७॥

[उपवासे] उपवास के दिन [पञ्चानां] पाँच [पापानाम्] पापों का तथा [अलङ्क्रिया] अलंकार धारण करना, [आरम्भ] खेती आदि का आरम्भ करना, [गन्धपुष्पाणाम्] चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप करना, पुष्पमालाएँ धारण करना या पुष्पों को सूँघना, [स्नान] स्नान करना, [अञ्जन] काजल / सुरमा आदि लगाना तथा [नस्या] नाक से नस्य आदि का सूँघना इन सबका [परिहृतिं] परित्याग [कुर्यात्] करना चाहिए ।

उपवास के दिन कर्तव्य

धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान् ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालूः ॥१०८॥

[उपवसन] उपवास करने वाला व्यक्ति [अतन्द्रालूः] आलस्य-रहित होता [सतृष्णः] उत्कंठित होता हुआ हुआ [श्रवणाभ्यां] कानों से [धर्मामृतं] धर्मरूपी अमृत को [पिबतु] स्वयं पीवे [वा] अथवा [अन्यान्] दूसरों को [पाययेत्] पिलावे अथवा आलस्य रहित होता हुआ [ज्ञानध्यानपरो] ज्ञान और ध्यान में तत्पर [भवतु] होवे ।

प्रोषध और उपवास का लक्षण

चतुराहारविसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥१०९॥

[चतुराहार] चार प्रकार के आहार का [विसर्जनम्] त्याग करना [उपवासः] उपवास है । [सकृद्] एक बार [भुक्ति] भोजन करना [प्रोषधः] प्रोषध / एकासन है और [यत्] इसप्रकार [उपोष्य] उपवास करने के बाद [आरम्भं] एकाशन को [आचरति] करना [सः] वह [प्रोषधोपवासः] प्रोषधोपवास है ।

प्रोषधोपवासव्रत के अतिचार

ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे यत्प्रोषधोपवासव्यतिलंघनपंचकं तदिदम् ॥११०॥

[यत्] जो [अदृष्टमृष्टानि] बिना देखे तथा बिना शोधे [ग्रहणविसर्गास्तरणानि] पूजा आदि के उपकरणों को ग्रहण करना, मल-मूत्रादि को छोड़ना और संस्तर आदि को बिछाना तथा [अनादरास्मरणे] आवश्यक आदि में

अनादर और योग्य क्रियाओं को भूल जाना, [तदिदं] वे ये [षधोपवासव्यतिलंघनपंचकं] प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार हैं ।

वैयावृत्य का लक्षण

दानं वैयावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥१११॥

[तपोधनाय] तपरूप धन से युक्त तथा [गुणनिधये] सम्यग्दर्शनादि गुणों के भण्डार [अगृहाय] गृहत्यागी-मुनीश्वर के लिए [विभवेन] विधि, द्रव्य आदि सम्पत्ति के अनुसार [अनपेक्षितोपचारोपक्रियम्] प्रतिदान और प्रत्युपकार की अपेक्षा से रहित [धर्माय] स्व-पर के धर्म की वृद्धि के लिए जो [दानम्] दान दिया जाता है, वह [वैयावृत्यं] वैयावृत्य कहलाता है ।

वैयावृत्य का दूसरा लक्षण

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात् वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥११२॥

[गुणरागात्] सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्रीति से [संयमिनाम्] देशव्रत और सकलव्रत के धारक संयमीजनों को [व्यापत्तिव्यपनोदः] आई हुई नाना प्रकार की आपत्ति को दूर करना [पदयोः] पैरों का, उपलक्षण से हस्तादिक अङ्गों का [संवाहनं] दाबना [च] और [अन्योऽपि] अन्य भी [यावान्] जितना [उपग्रहः] उपकार है, वह वैयावृत्य कहा जाता है ।

दान का लक्षण

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥११३॥

[सप्तगुणसमाहितेन] सात गुणों से सहित और [शुद्धेन] कौलिक, आचारिक तथा शारीरिक शुद्धि से सहित दाता के द्वारा [अपसूनारम्भाणाम्] गृहसम्बन्धी कार्य तथा खेती आदि के आरम्भ से रहित [आर्याणां] सम्यग्दर्शनादि गुणों से सहित मुनियों का [नवपुण्यैः] नवधाभक्ति पूर्वक [प्रतिपत्तिः] आहारादि के द्वारा गौरव किया जाता है, वह दान [इष्यते] माना जाता है ।

दान का फल

गृहकर्मणापि निचितं कर्मविमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम् अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥११४॥

जिस प्रकार [वारि] जल [रुधिरमलं] खून को [धावते] धो देता है, [निचितं] निश्चय से उसी प्रकार [गृहविमुक्तानाम्] गृहरहित निग्रन्थ मुनियों के लिए दिया हुआ [प्रतिपूजा] दान [खलु] वास्तव में [गृहकर्मणापि] गृहस्थी सम्बन्धी [कर्म] कार्यों से उपार्जित अथवा सुदृढ़ भी [कर्मविमार्ष्टि] कर्म को नष्ट कर देता है ।

नवधा भक्ति का फल

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो, दानादुपासनात्पूजा भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥११५॥

[तपोनिधिषु] तप के खजाने स्वरूप मुनियों को [प्रणतेः] नमस्कार करने से [उच्चैर्गोत्रं] उच्चगोत्र, [दानात्] आहारादि दान देने से [भोगः] भोग, [उपासनात्] उपासना आदि करने से [पूजा] सम्मान, [भक्तेः] भक्ति करने से [सुन्दररूपं] सुन्दररूप और [स्तवनात्] स्तुति करने से [कीर्तिः] सुयश [प्राप्यते] प्राप्त किया जाता है।

अल्पदान से महाफल

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥११६॥

[काले] उचित समय में [पात्रगतं] योग्य पात्र के लिए दिया हुआ [अल्पमपि] थोड़ा भी [दानं] दान [क्षितिगतं] उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए [वटबीजमिव] वटवृक्ष के बीज के समान [शरीरभृताम्] प्राणियों के लिए [छायाविभवं] माहात्म्य और वैभव से युक्त, पक्ष में छाया की प्रचुरता से सहित [बहु] बहुत भारी [इष्टं] अभिलषित [फलं] फल को [फलती] फलता है।

दान के भेद

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥११७॥

[चतुरस्राः] चार ज्ञान-धारी (गणधर-देव) [आहारौषधयोः] आहार, औषध [च] और [उपकरणावासयोःअपि] उपकरण तथा आवास के भी [दानेन] दान से [वैयावृत्यं] वैयावृत्य को [चतुरात्मत्वेन] चार प्रकार का [ब्रुवते] कहते हैं।

दानों में प्रसिद्ध नाम

श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः सूकरश्च दृष्टान्ताः वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥११८॥

श्रीषेण राजा आहार दान के फल से श्री शांतिनाथ तीर्थकर हुये हैं। वृषभसेना ने औषधिदान के प्रभाव से अपने शरीर के स्पर्शित जल से बहुतों के दुःख दूर किये हैं। कौण्डेश ने मुनि को शास्त्रदान देकर अपने श्रुतज्ञान को पूर्ण कर प्रसिद्धि पाई है और सूकर ने मुनि को अभयदान देने के पुण्य से देवगति को प्राप्त किया है।

वैयावृत्य में अर्हत पूजा

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम् कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादतो नित्यम् ॥११९॥

[आदृतः] श्रावक को आदर से युक्त होकर [नित्यम्] प्रतिदिन [देवाधिदेवचरणे] अरहन्त भगवान् के चरणों में [कामदुहि] मनोरथों को पूर्ण करने वाली और [कामदाहिनि] काम को भस्म करने वाली [सर्वदुःखनिर्हरणम्] समस्त दुःखों को दूर करने वाली [परिचरणं] पूजा [परिचिनुयात्] अवश्य करनी चाहिए ।

पूजा का माहात्म्य

अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत्
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥१२०॥

[राजगृहे] राजगृही में [भेकः] मेढक [प्रमोदमत्तः] प्रमोद से हिंसित हुआ [कुसुमेनैकेन] एक पुष्प के द्वारा [महात्मनाम्] भव्य जीवों के आगे [अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं] अर्हन्त पूजा के माहात्म्य को [अवदत्] प्रकट किया था ।

वैयावृत्य के अतिचार

हरितपिधाननिधाने, ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि
वैयावृत्यस्यैते, व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥१२१॥

निश्चय से [हरितपिधाननिधाने] देने योग्य वस्तु को हरितपत्र आदि से ढकना तथा हरितपत्र आदि पर देने योग्य वस्तु को रखना, अनादर, अस्मरण और [मत्सरत्वानि] इर्ष्या ये पाँच वैयावृत्य के [व्यतिक्रमाः] अतिचार [कथ्यन्ते] कहे जाते हैं ।

सल्लेखना-अधिकार

सल्लेखना का लक्षण

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतिकारे
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥१२२॥

[आर्याः] गणधरादिक देव [निःप्रतीकारे] प्रतिकार रहित [उपसर्गे] उपसर्ग, [दुर्भिक्षे] दुष्काल, [जरसि] बुढ़ापा [च] और [रुजायां] रोग के उपस्थित होने पर [धर्माय] धर्म के लिए [तनुविमोचनं] शरीर के छोड़ने को [सल्लेखना] सल्लेखना [आहुः] कहते हैं ।

सल्लेखना की आवश्यकता

अन्तःक्रियाधिकरणं, तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥१२३॥

[सकलदर्शिनः] सर्वजदेव [अन्तः क्रियाधिकरणं] अन्त समय समाधिमरणस्वरूप सल्लेखना को [तपः फलं] तप का फल [स्तुवते] कहते हैं [तस्मात्] इसलिए [यावद्विभवं] यथाशक्ति [समाधिमरणे] समाधिमरण के विषय में [प्रयतितव्यम्] प्रयत्न करना चाहिए ।

सल्लेखना की विधि

**स्नेहं वैरं सङ्गं, परिग्रहं चापहाय-शुद्धमनाः
स्वजनं परिजनमपि च, क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥१२४॥**

सल्लेखनाधारी [स्नेहं] राग को [वैरं] बैर को [सङ्गं] ममत्वभाव को [च] और [परिग्रहं] परिग्रह को [अपहाय] छोड़कर [शुद्धमनाः सन्] स्वच्छ हृदय होता हुआ [प्रियैःवचनैः] मधुर वचनों से [स्वजनं] अपने कुटुम्बी जन तथा [परिजनमपि] परिकर के लोगों को [क्षान्त्वा] क्षमा कराकर [क्षमयेत्] स्वयं क्षमा करे ।

महाव्रत धारण का उपदेश

**आलोच्य सर्वमेनः, कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्
आरोपयेन्महाव्रत-मामरणस्थायि निःशेषम् ॥१२५॥**

सल्लेखनाधारी [कृतकारितम्] कृत, कारित [च] और [अनुमतं] अनुमोदित [सर्वम्] समस्त [एनः] पापों को [निर्व्याजम्] छल कपट रहित या आलोचना के दोषों से रहित [आलोच्य] आलोचना करके [आमरणस्थायि] जीवनपर्यन्त रहने वाले [निःशेषम्] समस्त/पाँचों [महाव्रतम्] महाव्रतों को [आरोपयेत्] धारण करे ।

स्वाध्याय का उपदेश

**शोकं भयमवसादं, क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च, मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥१२६॥**

[शोकं] शोक, [भयं] डर, [अवसादं] विषाद, [क्लेदं] स्नेह, [कालुष्यम्] रागद्वेष और [अरतिमपि] अप्रीती को भी [हित्वा] छोड़कर [च] और [सत्त्वोत्साहम्] बल और उत्साह को [उदीर्य] प्रकट करके [अमृतैः] अमृत के समान [श्रुतैः] शास्त्रों से [मनः] मन को [प्रसाद्यम्] प्रसन्न करना चाहिये ।

भोजन के त्याग का क्रम

**आहारं परिहाप्य, क्रमशः स्निग्धं-विवर्द्धयेत्पानम्
स्निग्धं च हापयित्वा, खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥१२७॥
खरपानहापनामपि, कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्व-यत्नेन ॥१२८॥**

सल्लेखनाधारी को [क्रमशः] क्रम से [आहारं] अन्न के भोजन को [परिहाप्य] छोड़कर [स्निग्धं पानम्] दूध आदि स्निग्ध पेय को [विवर्द्धयेत्] बढ़ाना चाहिए [च] पश्चात् [स्निग्धं] दूध आदि स्निग्ध पेय को [हापयित्वा] छोड़कर [खरपानं] गर्म जल को [पूरयेत्] बढ़ाना चाहिए ।

[खरपानहापनामपि] गर्म जल का भी त्याग [कृत्वा] करके [शक्त्या] शक्ति के अनुसार [उपवासमपि] उपवास भी [कृत्वा] करके [सर्वयत्नेन] पूर्ण तत्परता से [पञ्चनमस्कारमनाः] पञ्चनमस्कार मंत्र में मन लगाता हुआ [तनुं] शरीर को [त्यजेत्] छोड़े ।

सल्लेखना के पांच अतिचार

जीवितमरणाशंसे, भयमित्र-स्मृतिनिदाननामानः
सल्लेखनातिचाराः, पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥१२९॥

[जीवितमरणाशंसे] जीवितशंसा, मरणाशंसा [भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः] भय, मित्रस्मृति और निदान नाम से युक्त [पञ्च] पाँच [सल्लेखनातिचाराः] सल्लेखना के अतिचार [जिनेन्द्रैः] जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा [समादिष्टाः] कहे गये हैं ।

सल्लेखना का फल

निःश्रेयसमभ्युदयं, निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्
निः पिबति पीतधर्मा, सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥१३०॥

[पीतधर्मा] धर्मरूपी अमृत का पान करने वाला कोई क्षपक [सर्वैः] समस्त [दुःखैः] दुःखों से [अनालीढः] रहित होता हुआ [निस्तीरं] अन्त रहित तथा [सुखाम्बुनिधिम्] सुख के समुद्र स्वरूप [निःश्रेयसम्] मोक्ष का [निःपिबति] अनुभव करता है और कोई क्षपक [दुस्तरं] बहुत समय में समाप्त होने वाले [अभ्युदयं] अहमिन्द्र आदि की सुख परम्परा का अनुभव करता है ।

मोक्ष का लक्षण

जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्
निर्वाणं शुद्धसुखं, निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥१३१॥

[जन्मजरामयमरणैः] जन्म, बुढ़ापा, रोग, मरण, [शोकैः] शोक, [दुःखैः] दुःख [च] और [भयैः] भयों से [परिमुक्तम्] रहित [शुद्धसुखं] शुद्ध सुख से सहित [नित्यम्] नित्य-अविनाशी [निर्वाणं] निर्वाण [निःश्रेयसम्] निःश्रेयस [इष्यते] माना जाता है ।

मुक्तजीवों का लक्षण

विद्यादर्शन-शक्ति-स्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः
निरतिशया निरवधयो, निःश्रेयसमावसन्ति सुखम् ॥१३२॥

[विद्यादर्शनशक्ति] केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य [स्वास्थ्यप्रह्लाद] परम उदासीनता, अनंतसुख [तृप्तिशुद्धियुजः] तृप्ति और शुद्धि को प्राप्त [निरतिशयाः] हिनाधिकता रहित और [निरवधयः] अवधि से रहित जीव [सुखम्] सुखस्वरूप [निःश्रेयसम्] मोक्षरूप निःश्रेयस में [आवसन्ति] निवास करते हैं ।

विकार का अभाव

काले कल्पशतेऽपि च, गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या

उत्पातोऽपि यदि स्यात्, त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटुः ॥१३३॥

[कल्पशते काले] सैंकड़ो कल्पकालों के काल के [गते] बीतने पर [अपि] भी [यदि] अगर [त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटुः] तीनों लोकों में खलबली पैदा करने वाला [उत्पातः] उपद्रव [अपि] भी [स्यात्] हो [तथापि] तो भी [पि च शिवानां] सिद्धों में [विक्रिया] विकार [न लक्ष्या] दृष्टिगोचर नहीं होता ।

मुक्तजीव कहाँ रहते हैं ?

निःश्रेयसमधिपन्ना-स्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते

निष्कट्टिकालिकाच्छवि-चामीकरभासुरात्मानः ॥१३४॥

[निष्कट्टिकालिकात्] कीट और कालिमा से रहित [छविचामीकर] कान्तिवाले सुवर्ण के समान [भासुरात्मानः] जिसका स्वरूप प्रकाशवान हो रहा है ऐसे [निःश्रेयसमधिपन्नाः] मोक्ष को प्राप्त हुए सिद्ध परमेष्ठी [त्रैलोक्य] तीन लोक के [शिखामणिश्रियं] अग्रभाग पर चूड़ामणि की शोभा को [दधते] धारण करते हैं ।

सद्धर्म का फल

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः, बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः

अतिशयितभुवनमद्भुत-मभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१३५॥

[सद्धर्मः] सल्लेखना के द्वारा समुपार्जित समीचीन धर्म [बलपरिजनकामभोग भूयिष्ठैः] बल, परिवार तथा काम और भोगों से परिपूर्ण [पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः] प्रतिष्ठा, धन और आज्ञा के ऐश्वर्य तथा [अतिशयितभुवनं] संसार को आश्चर्ययुक्त करने वाले तथा स्वयं [अद्भुतं] आश्चर्यकारी [अभ्युदयं] स्वर्गादिरूप अभ्युदय को [फलति] फलता है।

श्रावकपद-अधिकार

ग्यारह प्रतिमा

श्रावकपदानि देवै-रेकादश देशितानि येषु खलु

स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह, सन्तिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥१३६॥

[देवैः] तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा [एकादश] ग्यारह [श्रावकपदानि] श्रावक की प्रतिमाएँ [देशितानि] कही गई हैं [ये] जिनमें [खलु] वास्तव में [स्वगुणाः] अपनी-अपनी प्रतिमा सम्बन्धी गुण [पूर्वगुणैःसह] पूर्वपूर्व प्रतिमा सम्बन्धी गुणों के साथ [क्रमविवृद्धाः] क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए [सन्तिष्ठन्ते] स्थित होते हैं ।

दर्शन प्रतिमा

सम्यग्दर्शनशुद्धः, संसारशरीर-भोगनिर्विण्णः

पञ्चगुरुचरणशरणो, दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥१३७॥

[सम्यग्दर्शनशुद्धः] जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, [संसारशरीर-भोगनिर्विण्णः] संसार शरीर और भोगों से विरक्त है, [पञ्चगुरुचरणशरणो] पञ्च परमेष्ठियों के चरणों की शरण जिसे प्राप्त हुई है तथा [तत्त्वपथगृह्यः] तत्त्व-पथ की ओर जो आकर्षित है, [दर्शनिकः] वह दार्शनिक श्रावक है ।

व्रत प्रतिमा

**निरतिक्रमणमणुव्रत-पञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि
धारयते निःशल्यो, योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥**

[यः] जो [निःशल्यो] शल्यरहित होता हुआ [निरतिक्रमणम] अतिचार रहित [अणुव्रत-पञ्चकम्] पाँचों अणुव्रतों को [च] और [शीलसप्तकं] सातों शीलों को [धारयते] धारण करता है, [असौ] वह [व्रतिनां] गणधर-देवादिक व्रतियों के मध्य में व्रतिक श्रावक [मतः] माना गया है ।

सामायिक प्रतिमा

**चतुरावर्तत्रितय-श्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः
सामयिको द्विनिषद्य-स्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥१३९॥**

जो [चतुरावर्तत्रितयः] चार बार तीन-तीन आवर्त करता है, [चतुःप्रणामः] चार प्रणाम करता है, [स्थितः] कायोत्सर्ग से खड़ा होता है, [यथाजातः] बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्यागी होता है, [द्विनिषद्यः] दो बार बैठकर नमस्कार करता है, [त्रियोगशुद्धः] तीनों योगों को शुद्ध रखता है और [त्रिसन्ध्यम्] तीनों संध्याओं में [अभिवन्दी] वन्दना करता है, वह [सामयिकः] सामायिक प्रतिमाधारी है ।

प्रोषध प्रतिमा

**पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि, मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य
प्रोषधनियमविधायी, प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥१४०॥**

जो [मासेमासे] प्रत्येक मास में [चतुर्षु] चारों [अपि] ही [पर्वदिनेषु] पर्व के दिनों में [स्वशक्तिम्] अपनी शक्ति को [अनिगुह्य] न छिपाकर [प्रोषधनियमविधायी] प्रोषध सम्बन्धी नियम को करता हुआ [प्रणधिपरः] एकाग्रता में तत्पर रहता है, वह [प्रोषधानशनः] प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी है ।

सचित्त त्याग प्रतिमा

**मूलफलशाकशाखा - करीरकन्दप्रसूनबीजानि
नामानि योऽत्ति सोऽयं, सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१॥**

[यः] जो [दयामूर्तिः] दया की मूर्ति होता हुआ [आमानि] अपक्व / कच्चे मूल, फल, शाक, [शाक] डाली, [शाखा] कोंपलों, [करीर] अंकुरित, कन्द, [प्रसून] फूल और बीज को [न अत्ति] नहीं खाता है, वह यह [सचित्तविरतो] सचित्त त्यागी है ।

रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्

स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥१४२॥

[यः] जो [सत्त्वेषु] जीवों पर [अनुकम्पमानमनाः] दयालुचित होता हुआ [विभावयाम्] रात्रि में अन्न, [पानं] पेय, खाद्य और [लेह्यम्] चाटने योग्य पदार्थ को [अश्नाति] नहीं खाता है, [सः] वह रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमाधारी श्रावक [कथ्यते] कहलाता है ।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा

**मलबीजं मलयोनिं, गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं
पश्यन्नङ्गमनङ्गा-द्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥**

[मलबीजं] शुक्रशोणितरूप मल से उत्पन्न, [मलयोनिं] मलिनता का कारण, [गलन्मलं] मलमूत्रादि को झराने वाले [पूतिगन्धि] दुर्गन्ध से सहित [च] और [बीभत्सं] ग्लानि को उत्पन्न करने वाले शरीर को [पश्यन्] देखता हुआ [यः] जो [अनङ्गात्] कामसेवन से [विरमति] विरत होता है, [सः] वह ब्रह्मचारी अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रतिमा का धारक [कथ्यते] कहलाता है ।

आरम्भ त्याग प्रतिमा

**सेवाकृषिवाणिज्य-प्रमुखादारम्भतो व्युपरमति
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भ-विनिवृत्तः ॥१४४॥**

[यः] जो [प्राणातिपातहेतोः] जीव-हिंसा के कारण सेवा, [कृषि] खेती तथा [वाणिज्य] व्यापार आदि आरम्भ से [व्युपरमति] निवृत्त होता है, [असौ] वह [आरम्भ-विनिवृत्तः] आरम्भत्याग प्रतिमा का धारक है ।

परिग्रह त्याग प्रतिमा

**बाह्येषु दशसु वस्तुषु, ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः
स्वस्थः सन्तोषपरः, परिचितपरिग्रहाद्विरतः ॥१४५॥**

[दशसु] दश [बाह्येषु] बाह्य [वस्तुषु] वस्तुओं में [ममत्वम्] ममताभाव को [उत्सृज्य] छोड़कर [निर्ममत्वरतः] निर्मोही होता हुआ [यः] जो [स्वस्थः] आत्मस्वरूप में स्थित [च] तथा [सन्तोषपरः] सन्तोष में तत्पर रहता है, [सः] वह [परिचितपरिग्रहात्] सब ओर से चित्त में स्थित परिग्रह से [विरतः] विरत होता है ।

अनुमति त्याग प्रतिमा

**अनुमतिरारम्भे वा, परिग्रहे ऐहिकेषु कर्मसु वा
नास्ति खलु यस्य समधी-रनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥**

निश्चय से [आरम्भे] आरम्भ के कार्यों में अथवा [परिग्रहे] परिग्रह में [वा] अथवा [ऐहिकेषु] इस लोक सम्बन्धी [कर्मसु] कार्यों में [यस्य] जिसके [अनुमति] अनुमोदना [न] नहीं है, [सः] वह [समधीः] समान बुद्धि का धारक [अनुमतिविरतः] अनुमतित्याग प्रतिमाधारी [मन्तव्यः] माना जाना चाहिए ।

उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा

गृहतो मुनिवनमित्वा, गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य भैक्ष्याशनस्तपस्य-न्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥१४७॥

जो [गृहतो] घर से [मुनिवनम्] मुनियों के वन को [इत्वा] जाकर [गुरूपकण्ठे] गुरु के पास [व्रतानिपरिगृह्य] व्रत ग्रहण कर [भैक्ष्याशनः] भिक्षा भोजन करता हुआ [तपस्यन्] तपश्चरण करता है, [चेलखण्डधरः] तथा एक वस्त्रखण्ड को धारण करता है, वह उत्कृष्ट श्रावक [कथ्यते] कहलाता है ।

श्रेष्ठ ज्ञाता कौन है ?

पाप-मरातिर्धर्मो, बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन् समयं यदि जानीते, श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

[पापम्] पाप ही [जीवस्य] जीव का [मरातिः] शत्रु है [च] और [धर्मः] धर्म ही जीव का [बन्धु] हितकारी है, [इति] इस प्रकार [निश्चिन्वन्] निश्चय करता हुआ वह श्रावक [समयम्] आगम / आत्मा को [जानीते] जानता है, [तर्हि] तो वह [ध्रुवं] निश्चय से [श्रेयोज्ञाता] श्रेष्ठज्ञाता अथवा कल्याण का ज्ञाता [भवति] होता है ।

रत्नत्रय का फल

येन स्वयं वीतकलंकविद्या-दृष्टिक्रिया-रत्नकरण्डभावम् नीतस्तमायाति-पतीच्छयेव, सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु-विष्टपेषु ॥१४९॥

[येन] जिसने [स्वयं] अपने आत्मा को [वीतकलंक] निर्दोष [विद्या] ज्ञान, [दृष्टि] दर्शन और [क्रिया] चारित्ररूप [रत्नकरण्डभावम्] रत्नों के करण्डभाव-पिटारापने को [नीतः] प्राप्त कराया है, [तं] उसे [त्रिषुविष्टपेषु] तीनों लोकों में [पतीच्छयेव] पति की इच्छा से ही मानों [सर्वार्थसिद्धिः] धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों की सिद्धि [आयाति] प्राप्त होती है ।

इष्ट प्रार्थना

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव, सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु कुलमिव गुणभूषा, कन्यका सम्पुनीतात्- जिनपतिपदपद्म-प्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥१५०॥

[जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी] जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलों का अवलोकन करने वाली ऐसी यह [दृष्टिलक्ष्मीः] सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी [सुखभूमिः] सुख की भूमि ऐसी कामिनी के सदृश [मां] मुझे [सुखयतु] सुखी करे जैसे [कामिनी] स्त्री [कामिनमिव] कामी पुरुष को, [भुनक्तु] रक्षित करे, जिस तरह की [शुद्धशीला जननी] शुद्ध शीलवती माता जैसे [सुतमिव] अपने पुत्र का [सम्पुनीतात्] पालन करती है तथा [गुणभूषाकन्यका] गुणों से भूषित कन्या जैसे अपने [कुलम्] कुल को पवित्र करती है वैसे ही वह मुझे पवित्र करे ॥

